सच की जीत

गुलाम सूफ़ी हैदरी

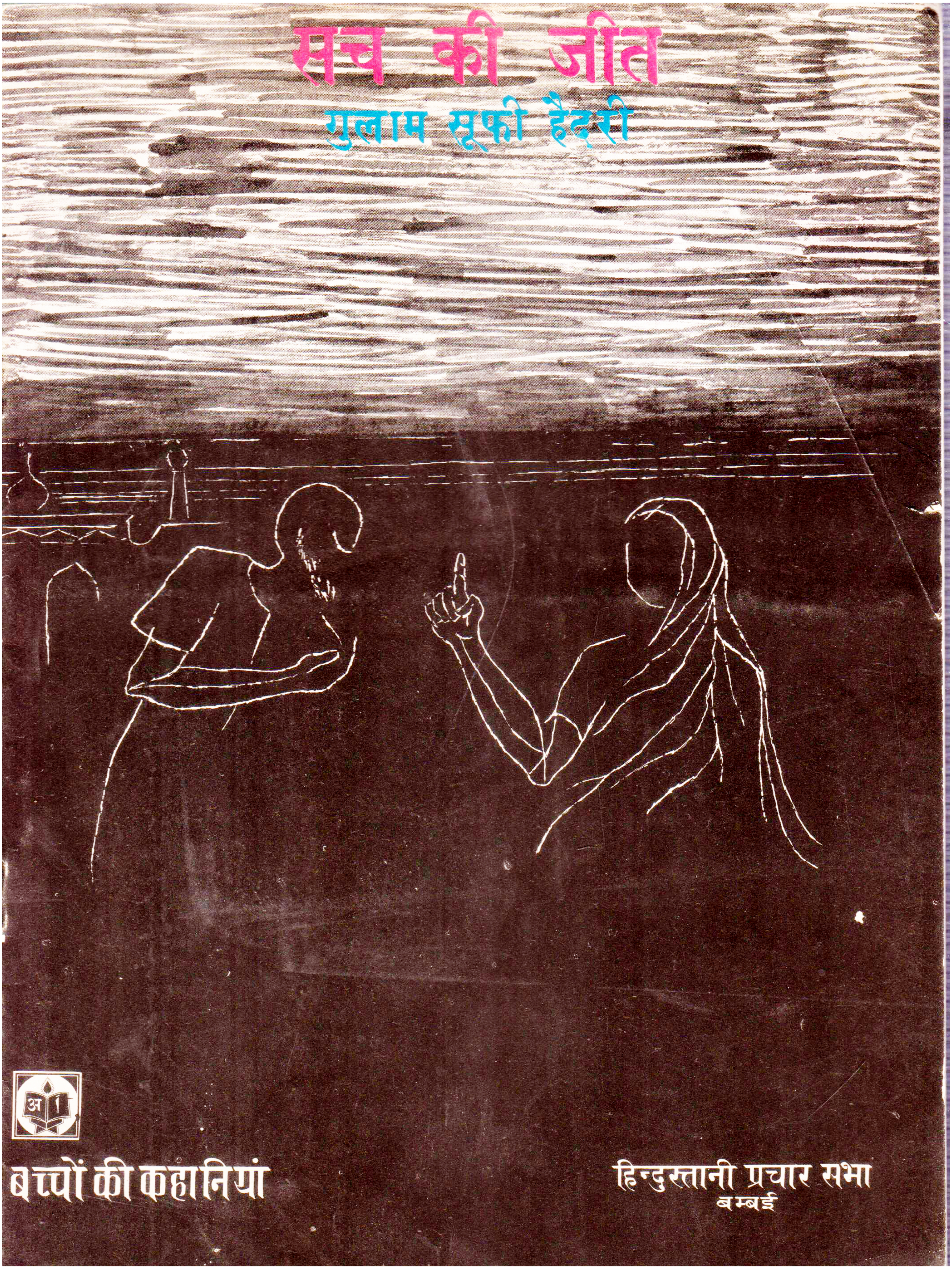

बच्चों की कहानियां

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
बम्बई

हमारे देश की संस्कृति दुनिया में सबसे पुरानी और [illegible] है। [illegible] जलन और बैर की वजह से हम कमजोर हो गये हैं और इन [illegible] हैं नये जमाने की शिक्षा भी हमें सुधार नहीं पाई है। इसीलिए इस कमजोरी और [illegible] से हम उबर नहीं पा रहे हैं। फिर भी यह हकीकत है कि हमारी संस्कृति अत्यंत ऊंची है [illegible] मिट नहीं सकती है।

दूसरे प्राणियों के मुकाबले आदमी में यह एक विशेषता है कि उसमें धर्म की सूझबूझ है। अच्छा-बुरा, धर्म-अधर्म परखने का उसे विवेक है। मैं तो इसे ही सच्चा धर्म मानता हूं। 'धर्म' वही है जिससे आदमी का सुखी, सार्थक जीवन बनता है। धार्मिक इन्सान समझता है कि दूसरों के सुख में उसका भी सुख है। दूसरों को तबाह करके कोई सुखी नहीं हो सकता। दूसरों के दुःख से जो सुख उठाता है, वह अधर्मी है।

सच्चाई और अहिंसा, धर्म पर चलने के दो रास्ते हैं। दुनिया के सभी धर्मों में इन दो बातों पर जोर दिया गया है। हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध, ईसाई, पारसी, जैन, सिख आदि सभी धर्मों के पैगम्बरों ने धर्म के जिन आदर्शों की बात कही है, वह हर इन्सान के लिए समान रूप से लागू होती है। हमारे देश की परंपरा में सब धर्मों के लिए इज्जत की भावना रही है। हिन्दू धर्म का दायरा बहुत बड़ा और सबका भला चाहनेवाला रहा है। अफसोस है तो इस बात का कि हम लोगों में एक के बाद एक कमजोरियां आती गईं और एक उदार धर्म की अनमोल दौलत हम संभाल नहीं सके।

आज इस बात की जरूरत है कि दुनिया के विकसित धर्मों में हमारे लिए जो आवश्यक बातें कही गयी हैं उन्हें हम समझें और अपने जीवन में उन पर चलने की कोशिश करें।

नई पीढ़ी को सही समझ और शिक्षा देने के लिए ऐसे विचार उनके सामने रखना जरूरी है जिससे वे आदर्शों की तरफ प्रेरित हों और जिन्दगी का सही रास्ता उन्हें मिल सके।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा ने इसी उद्देश्य से दुनिया के मुख्य धर्मों में जो शिक्षाप्रद कहानियां हैं, बड़े-बड़े संत-पैगम्बरों की जिन्दगी में जो सच्ची घटनाएं हुई हैं, उन्हें लेकर एक सौ सचित्र पुस्तकें छापने की योजना बनाई है।

कहानियां इस तरह रखी गयी हैं कि बच्चों को वे उपदेश नहीं, जीवन से जुड़ी हुई मालूम हों और आसानी से समझ में आ जायें। मुझे उम्मीद है कि बच्चों के माता-पिता भी इन कहानियों को दिलचस्पी से पढ़ेंगे और अपने जीवन को समृद्ध करेंगे।

मुझे उम्मीद है कि इस कोशिश को पसन्द किया जायेगा, इस पर अमल किया जायेगा और इसका प्रचार किया जायेगा।

मोरारजी देसाई

अध्यक्ष,
हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

बच्चों की कहानियां – ३९

सच की जीत

गुलाम सूफी हैदरी

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
बम्बई

© हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, १९८३

संपादक :
मूलशंकर भट्ट

चित्रकार :
योगेश रावल

प्रकाशक :
वाडीलाल डगली
मानद मंत्री
हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
महात्मा गांधी मेमोरियल बिल्डिंग
बम्बई–४०० ००२

मुद्रक :
जितेन्द्रभाई ठाकोरभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय
अहमदाबाद–३८० ०१४

मूल्य :
दो रुपये

सच की जीत

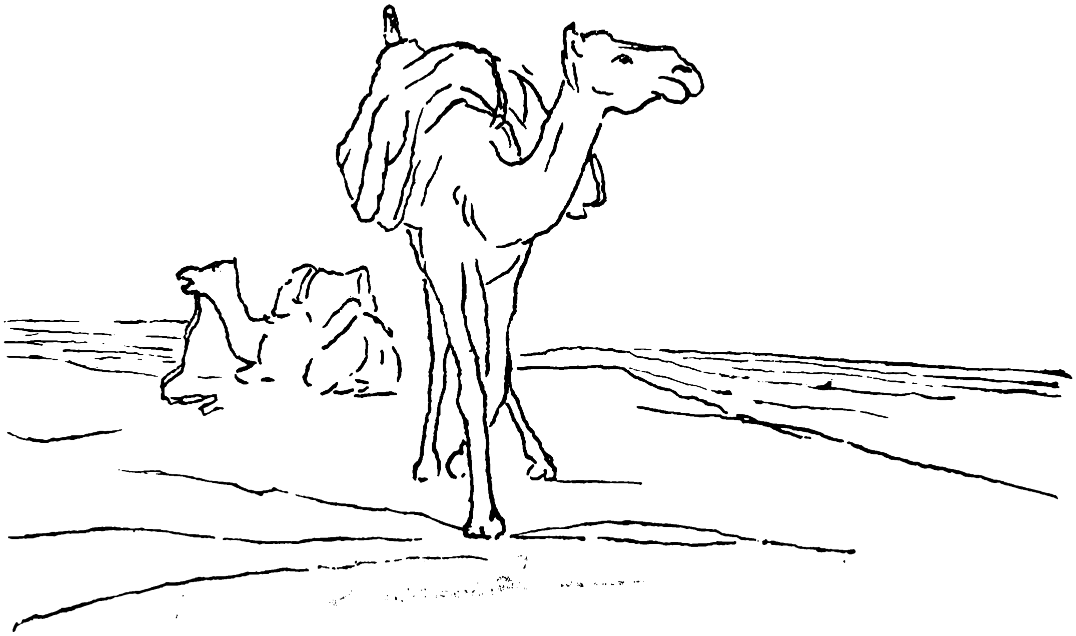

बहुत दिनों की बात है । एक थे अब्दुल कादिर । वे जिस गांव में रहते थे उसका नाम था जीलान । जीलान में उनका एक छोटा-सा खाता-पीता घराना रहता था । उनके बाप का नाम सैयद मूसा था और मां का नाम फातिमा ।

सैयद मूसा बड़े अच्छे आदमी थे । लोगों के दुःख-दर्द में काम आते थे और छोटे-बड़ों की सेवा करते थे । फातिमा भी बहुत भली औरत थीं।

अब्दुल कादिर अपने मां-बाप के इकलौते लड़के थे । वे बड़े भाग्यशाली थे कि उनके सर पर ऐसे अच्छे मां-

बाप की छाया थी। छः वर्ष की आयु से वे नमाज के समय बाप के साथ मस्जिद में जाते। दूसरे नमाजियों को देखकर उनकी नकल करते। नमाज पूरी होने के बाद अपने नन्हे-मुन्ने हाथों से सबसे हाथ मिलाते। वे थे भी बहुत प्यारे। गोरा-गोरा रंग, बड़ी-बड़ी सुन्दर आंखें, लम्बी-लम्बी पलकें, बिल्कुल चांद की तरह दीखते थे।

जीलान में सिर्फ एक मदरसा था, जिसमें चार दर्जे थे। यह मदरसा मस्जिद के निकट, खजूर के पत्तों से बनाया गया था। मिट्टी की चारदीवारी मदरसे को मस्जिद से अलग करती थी। मदरसा छोटा था, लेकिन उसमें पढ़नेवालों की संख्या अधिक थी। गांव में पढ़ने-लिखने की लगन थी। अब्दुल कादिर भी इस मदरसे में पढ़ रहे थे। उस्ताद काम से बाहर जाते तो थोड़ी देर के लिए पढ़ाई का काम अब्दुल कादिर को सौंप जाते। वे भी उस्ताद के भरोसे पर आंच न आने देते थे।

संयोगवश एक दिन अब्दुल कादिर और उनका एक सहपाठी नईम, दोनों मदरसे देर से पहुंचे। उस्ताद ने पहले नईम से पूछा, "नईम, तुम देर से क्यों आये?" नईम ने जवाब दिया, "मां ने मुझे काम से बाहर भेजा था।" फिर उस्ताद ने अब्दुल कादिर से पूछा, "अब्दुल कादिर, तुम तो समय के बड़े पाबन्द हो। साल-भर में तुमने कभी देर नहीं की। आज क्यों देर से आये?" उन्होंने जवाब दिया, "आज मुझे उठने में देर हो गई।" नईम ने कादिर का सच-सच जवाब सुना तो उसका मन अपने झूठ बोलने पर पछताने लगा। वह खड़ा हो गया। आंसू भरी आंखों से उसने सबके सामने स्वीकार किया कि उसने झूठ कहा था कि उसकी मां ने उसे कहीं बाहर भेजा था। वह खुद मदरसा देर से आया है।

उस्ताद ने दोनों में से किसी को सजा नहीं दी। दोनों को माफ कर दिया। लेकिन शागिर्दों को सम्बोधित करते हुए कहा कि सदा सच बोलो, क्योंकि सच्चाई में मुक्ति है और झूठ में विनाश।

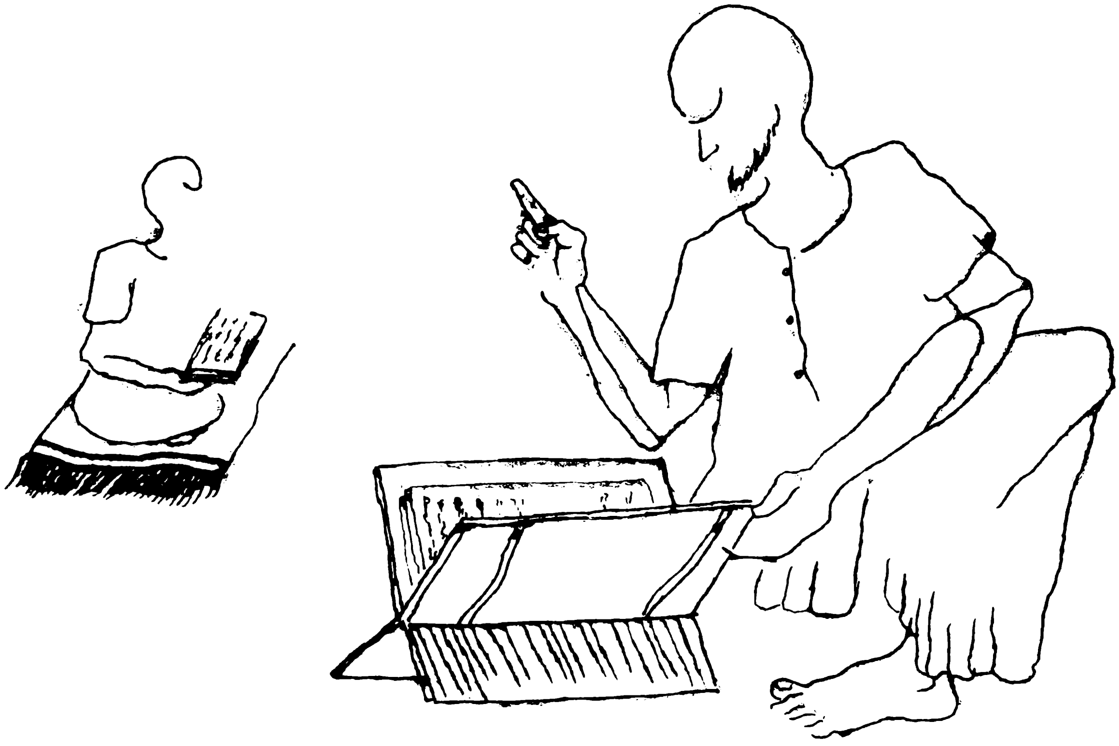

"जीलान में सिर्फ एक मदरसा था।"

इस तरह समय बीतने के साथ-साथ अब्दुल कादिर के गुण सामने आने लगे। वे हर कक्षा में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते और दूसरे बालक उनकी सफलता पर कुढ़ते। चौथी कक्षा की परीक्षा में तो उन्होंने कमाल ही कर दिया। पूरे मदरसे के बच्चों में सबसे अधिक नम्बर प्राप्त किये। मदरसे की स्थापना को दस वर्ष बीत चुके थे। इन दस वर्षों में कई बच्चे चौथी कक्षा से उत्तीर्ण होकर निकले, लेकिन किसी ने इतने नम्बर प्राप्त नहीं किये थे।

मदरसे में पांचवीं कक्षा नहीं थी, इसलिए उन्हें मदरसा छोड़ना पड़ा। आस-पास के किसी गांव में भी मदरसा न था। उनकी पढ़ाई किस प्रकार जारी रहती? उनके पिता सैयद मूसा विद्वान थे। उन्होंने बालक को घर में पढ़ाना शुरू किया। अब्दुल कादिर दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रगति करते रहे। उनके पिता की इच्छा थी कि वर्ष, दो वर्ष में उनको आगे की पढ़ाई के लिए किसी बड़े नगर में भेजा जाये।

अभी अब्दुल कादिर सोलह वर्ष के हुए थे कि उनका हरा-भरा घर उजड़ गया। उनके पिता सैयद मूसा अचानक ऐसे बीमार पड़े कि फिर बिस्तर से उठ न सके। अपने सोलह वर्षीय बेटे और सुशील पत्नी को दुनिया के समुद्र में थपेड़े खाने के लिए छोड़कर चले गये। अब्दुल कादिर अनाथ हो गए और फातिमा विधवा! घराने के भविष्य की सारी योजनाएं धरी-की-धरी रह गयीं।

सैयद मूसा ने अपने पीछे कुछ ऊंट और कुछ भेड़ें छोड़ी थीं। यह पूंजी दो-चार वर्ष के लिए भी पूरी नहीं थी। उनकी माली हालत बिगड़ती गई। गर्मियों में ताल और सागर भी सूख जाते हैं, दो-चार भेड़-बकरियों की गिनती ही क्या!

अब्दुल कादिर अब अट्ठारह वर्ष के हो चुके थे। उम्र के साथ उनकी पढ़ाई की लगन भी बढ़ती जा रही थी। अब वे अपनी पुरानी इच्छा

को अधिक न दबा सके । जितना वे अपनी इच्छा को दबाते, उतनी ही अधिक वह और उभरती थी ।

एक दिन मां बहुत खुश दीखीं तो अब्दुल कादिर ने मौके का लाभ उठाया । मां से अपने दिल की बात कहनी चाही । बालक की हिचकिचाहट देखकर मां मुस्करा दीं । हिम्मत पाकर कादिर ने खुलकर कहना शुरू किया, "मां, मुझे आज्ञा दो कि मैं बगदाद जाऊं और वहां के मदरसे में प्रवेश लेकर तालीम पाऊं । प्यारी अम्मा, मूर्ख का कोई आदर नहीं करता, पढ़े–लिखे का नाम सदा अमर रहता है । जो आदमी पढ़ने-लिखने के लिए घर से निकलता है वह मानो स्वर्ग की ओर जाता है ।"

अब्दुल कादिर बेधड़क बोलते जा रहे थे जैसे कोई सभा में भाषण कर रहे हों । मां ने बेटे का छोटा-मोटा भाषण सुना । बहुत खुश हुईं । खुदा का शुक्र अदा किया कि बालक को पढ़ने की लगन है । मां खुद भी पढ़ाई में दखल रखती थीं । उन्होंने तुरंत आज्ञा दे दी । कादिर की खुशी की कोई हद न रही ।

यह उस समय की बात है जब कि न रेलें थीं और न मोटरें । हवाई जहाज की तो बात ही क्या ! करीब जाना हो या दूर, केवल ऊंट और घोड़े ही सवारी के एकमात्र साधन थे । रास्ते भयं-कर थे । डाकुओं का भय लगा रहता, इसलिए लोग दल बनाकर सफर करते ।

कोई सप्ताह या महीना ऐसा न जाता कि कोई यात्री–दल बगदाद के लिए रवाना न होता हो । हर यात्री-दल जीलान में पड़ाव डालता, आराम करता और फिर आगे बढ़ता । यात्रियों से जीलानवासियों को बगदाद के हालात मालूम होते रहते । बगदाद का नाम दूर-दूर तक फैला हुआ था । वहां की लम्बी-चौड़ी मस्जिदें, ऊंची-ऊंची मीनारें, बड़े-बड़े गुम्बदों ने नगर में चार चांद लगा दिए थे। बहुत से लोग तो उसे 'गुम्बदों का नगर' कहते थे । चौड़ी, सुन्दर सड़कें, दजला-फरात

से निकली हुई कल-कल करती नहरें और किनारे पर लगे हुए बागों और महलों ने उसको बहुत सुन्दर बना दिया था। पर अब्दुल कादिर को इन चीजों में कोई रुचि न थी। उनको तो बगदाद के शानदार विद्यालयों और मदरसों से लगाव था। बगदाद के नाम ही से अब्दुल कादिर का मन मचलने लगता। वे हवा के कंधों पर चढ़कर बगदाद जाने को तैयार थे।

एक दिन एक यात्री-दल उत्तर की ओर से आकर जीलान में ठहरा। पिछले तीन महीनों में दो यात्री-दल यहां आये थे, उनमें यह यात्री-दल सबसे बड़ा था। जीलान के आस-पास के लोग भी इसमें थे। जीलान के कुछ व्यापारी भी इनके साथ हो गए। दयालु मां ने कादिर की यात्रा की तैयारी शुरू कर दी। उनके पास चालीस अशर्फियां थीं। यही उनकी कुल पूंजी थी। इन अशर्फियों को उन्होंने अब्दुल कादिर के कुर्ते के अन्दर सिल दिया इस प्रकार कि वह बिल्कुल दिखाई न देती थीं। जरूरी सामान भी साथ कर दिया। जब दल के कूच का समय आया तो मां ने सलाह दी, "बेटा, एक बात तुम अपनी गांठ में बांध लो। तुम पर बड़ी-से-बड़ी मुसीबत आए, आकाश गिर पड़े, धरती पलट जाए, तुम्हारी जान के लाले पड़ जायें, मगर झूठ न बोलना। सच, आदमी को हर मुसीबत से बचाता है और सच ही उसे सच्चा सुख देता है।" कादिर ने जवाब दिया, "प्यारी मां, मैं अपने जीवन की बाजी लगाकर सच बोलूंगा और सच के अलावा कुछ न कहूंगा।"

विधवा मां ने अपने बेसहारा बच्चे को आंसू भरी आंखों से विदा किया।

काफिले के ऊंट एक सीध में जा रहे थे। एक-के-पीछे-एक, जैसे कोई सैनिक दस्ता जा रहा हो। ऊंचे–ऊंचे ऊंट, लम्बे-लम्बे डग, बहुत सुन्दर दृश्य था। कुछ नौजवानों के ऊंट दल के अगले भाग में थे। उन्होंने गाना शुरू कर दिया। सबसे आगे यात्री-दल के सरदार का ऊंट था। वह अधेड़ उम्र का एक मजबूत आदमी था।

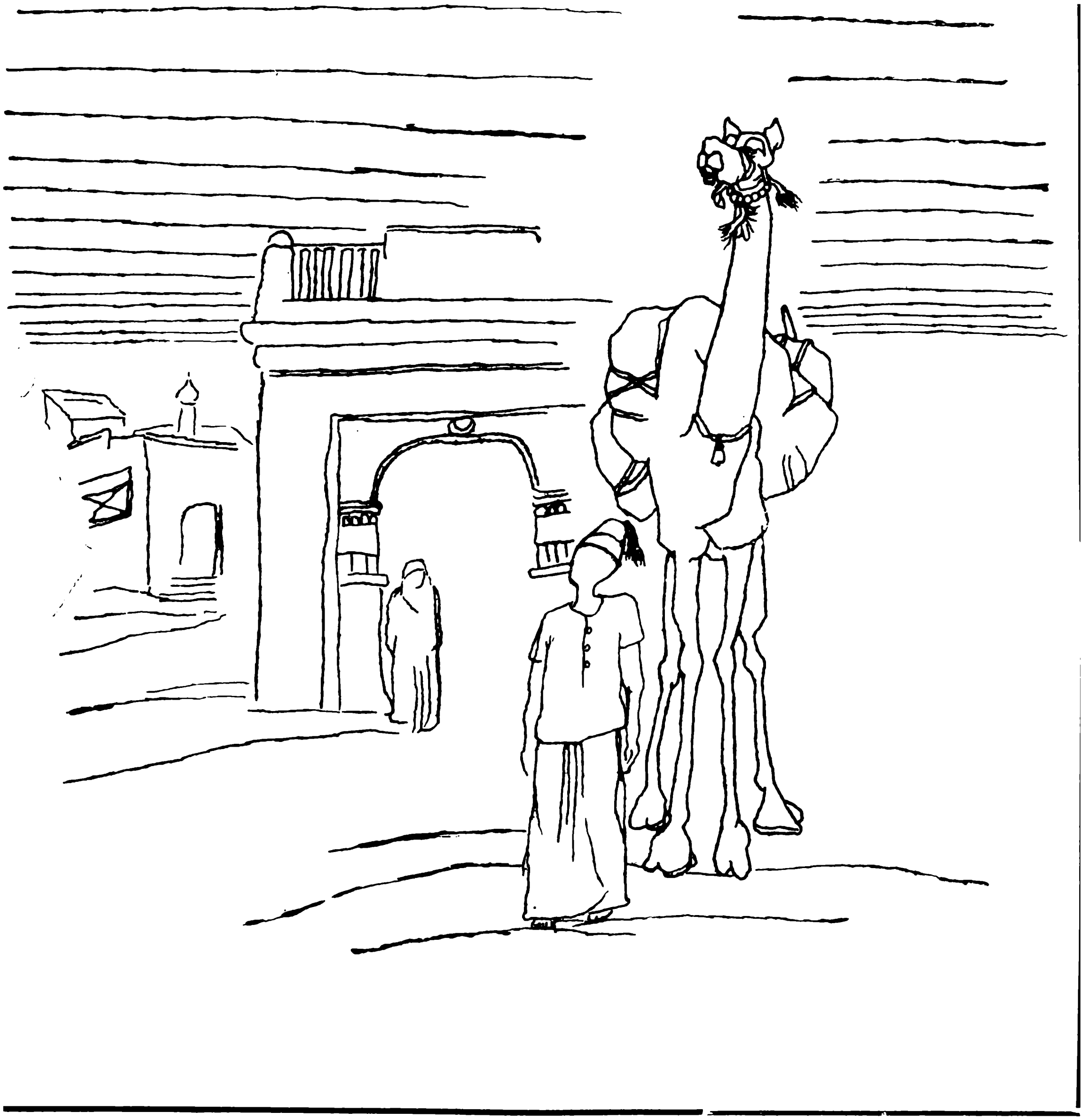

पूरा–का–पूरा रेगिस्तानी इलाका था। दूर–दूर तक, छोटी–छोटी कांटेदार झाड़ियां दिखायी पड़ रही थीं। न कोई पेड़ था, न पहाड़। जिधर देखो उधर रेत–ही–रेत दिखाई दे रही थी।

सरदार को रास्ते की ऊंच–नीच की पूरी खबर थी। हर दिशा में उसकी नजर थी। धूप पीली–पीली हो चुकी थी, फिर भी गर्मी में तनिक कमी नहीं आई थी। हवा के झोंके थोड़ी-थोड़ी देर बाद, एक ओर से आते और दूसरी ओर निकल जाते थे। रेत उड़ रही थी। शाम ढली और चांद निकला। मगर तुरन्त ही काले-काले बादलों ने चांद को अपने आंचल में छुपा लिया। अंधेरा छा गया और यात्री-दल को इसी जगह पर ठहर जाना पड़ा। किसी तरह सुबह का सूरज बाहर निकला। सबने खुदा का शुक्र अदा किया। दल ने आगे कूच की तैयारी की। एक-दो दिन इसी तरह बीत गए। अब रेगिस्तानी इलाके से वे बहुत दूर निकल चुके थे। घने जंगल शुरू हो चुके थे। रास्ता भटकने का डर न था। कभी पंछियों की चहचहाहट सुनाई पड़ती, कभी जंगली जानवरों की आवाज। ऊंट चलते-चलते पेड़ों के पत्ते चबाने लगते। दल की चाल धीमी पड़ चुकी थी। यात्रियों को पेड़ों की टहनियों से बचने के लिए कहीं-कहीं झुकना पड़ता। कुछ लोग ऊंट की पीठ से उतर कर, उसकी नकेल पकड़े चल रहे थे। अलबुर्ज पर्वत की ऊंची-ऊंची चोटियां दिखाई पड़ रही थीं। सबकी हिम्मत बढ़ गई थी। अलबुर्ज पार करके लोग बगदाद के जंगल में दाखिल होते थे।

एक दिन ऊंट अलबुर्ज की गहरी घाटी में से गुजर रहे थे कि यकायक पहाड़ की तलहटी से धूल उड़ती हुई दिखाई दी। घोड़ों के टापों की आवाजें सुनाई देने लगीं। आवाजें निकट से आ रही थीं। यात्री-दल में कुहराम मच गया। ऊंट बिदकने लगे। उनके गले की घंटियां बजने लगीं। सबसे पहले धूल उड़ाते घोड़े दिखाई पड़े, फिर

डाकू ! उनकी बेतरतीब दाढ़ियां, बड़ी-बड़ी मूछें और डरावने चेहरे !

डाकुओं ने यात्री-दल पर अचानक ही धावा बोल दिया । वे घोड़ों से उतरे और देखते-देखते यात्री-दल को अपने घेरे में ले लिया । हर डाकू माल लूटने के चक्कर में था और जिस डाकू के हाथ जो यात्री आया, उसने उसको ही दबोच लिया । एक डाकू ने अब्दुल कादिर को पकड़ा और पूछा, "तेरे पास क्या है ?" कादिर ने आराम से उत्तर दिया, "मेरे पास चालीस अशर्फियां हैं ।" डाकू को भरोसा नहीं हुआ । वह समझा, पास तो इसके फूटी कौड़ी नहीं मालूम होती है और बात करता है अशर्फियों की । अशर्फियां वैसे भी नजर नहीं आ रही थीं । लड़के को छोड़कर डाकू दूसरी तरफ लपका ।

कादिर की आंखों में अपनी मां का चेहरा घूम गया । उसको ऐसा मालूम हुआ जैसे मां खड़ी हैं, बहुत खुश हैं, और सच बोलने पर बेटे की प्रशंसा कर रही हैं । इतने में दूसरा डाकू आ गया । उसने उसका हाथ पकड़ा और कड़ककर पूछा, "तेरे पास क्या है ?" कादिर ने उत्तर दिया, "चालीस अशर्फियां !" उत्तर में लापरवाही थी । डाकू अचरज में पड़ गया । उसने समझा कि यह खिल्ली उड़ा रहा है । अब्दुल कादिर को पकड़कर वह अपने सरदार के पास ले गया ।

अब्दुल कादिर सरदार के सामने खड़े थे । चेहरे पर डर बिल्कुल नहीं था ।

डाकुओं का सरदार बुरा जरूर था, लेकिन था इन्सान ! मन के किसी अंधेरे कोने में अब भी इन्सानियत की ज्योति जल रही थी । उसने बार-बार अब्दुल कादिर को नीचे-से-ऊपर तक देखा । कादिर के रोम-रोम से सज्जनता फूटी पड़ रही थी । वे अच्छाइयों की मूर्ति दिखाई पड़ते थे । सरदार बहुत प्रभावित हुआ । प्रेम से पूछने लगा, "प्यारे बेटे, तुम कौन हो, कहां के रहनेवाले हो, कहां जा रहे हो ?"

नौजवान ने उत्तर दिया, "मेरा नाम अब्दुल कादिर है । जीलान का रहनेवाला हूं । तालीम के लिए

बगदाद जा रहा हूं।" सरदार ने फिर प्रश्न किया, "तुम्हारे पास कितना माल है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे पास चालीस अशर्फियां हैं। ये अशर्फियां मेरी मां ने मेरे कुर्ते में सिल दी हैं।" कुर्ते के अन्दर का भाग उधेड़ा गया तो सचमुच उसमें से चालीस अशर्फियां निकलकर बिखर गईं।

सरदार ने कहा, "बेटे, तुम थोड़ा झूठ बोलकर अपनी चालीस अशर्फियां बचा सकते थे।" अब्दुल कादिर ने तुरंत उत्तर दिया, "झूठ बोलना महापाप है। झूठ बोलनेवाला संसार में ही नहीं, परलोक में भी अपमानित होता है। मुझे यह अपमान मंजूर नहीं।"

अब्दुल कादिर की इस बात से सरदार का मन पिघल गया। उसने जीवन में कभी सोचा भी न था कि पाप क्या है, और पुण्य क्या! उसको ऐसा लगा मानो वह सोया हुआ था और इस लड़के ने उसको झकझोर कर जगा दिया है। उसको एक-एक कर अपने सारे पाप याद आने लगे। वह बड़ा शर्मिन्दा हुआ और कादिर को गले से लगाकर माफी मांगने लगा। अब्दुल कादिर ने कहा, "खुदा से डरो और उससे माफी मांगो। अपने पापों का मन से पश्चात्ताप करो।"

डाकुओं के सरदार ने खुदा से माफी मांगी और आदेश दिया कि सारा लूटा हुआ माल लौटा दिया जाये। अजीब-सा दृश्य था। थोड़े समय पहले सब लूटमार कर रहे थे और अब वे माल लौटा रहे थे। यात्री-दल को अलबुर्ज पर्वत की घाटी के अंतिम सिरे तक छोड़ने भी वे गये।

अब मैदानी भाग आ चुका था। किसी तरह का भय न था। रास्ता भी साफ था। दल चलते-चलते किरमान

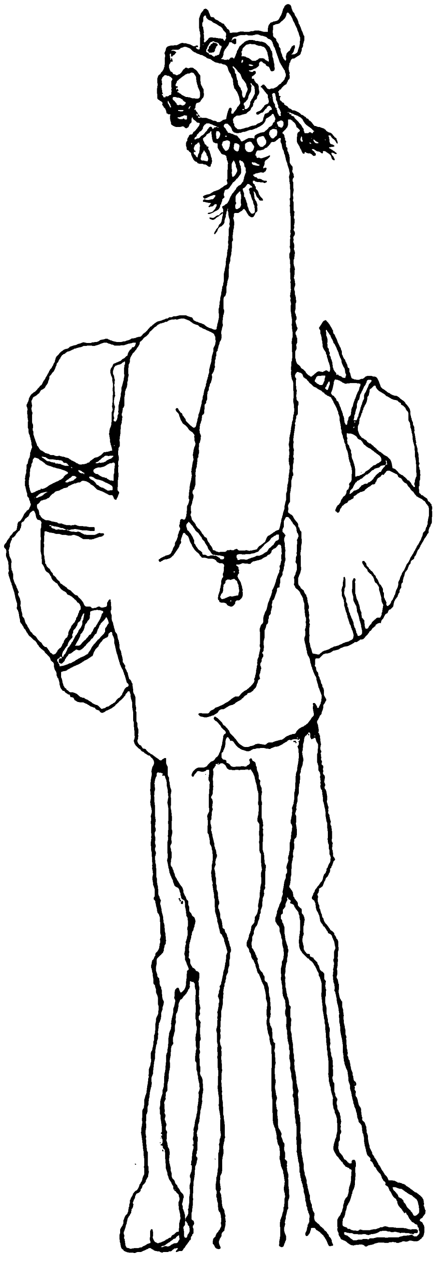

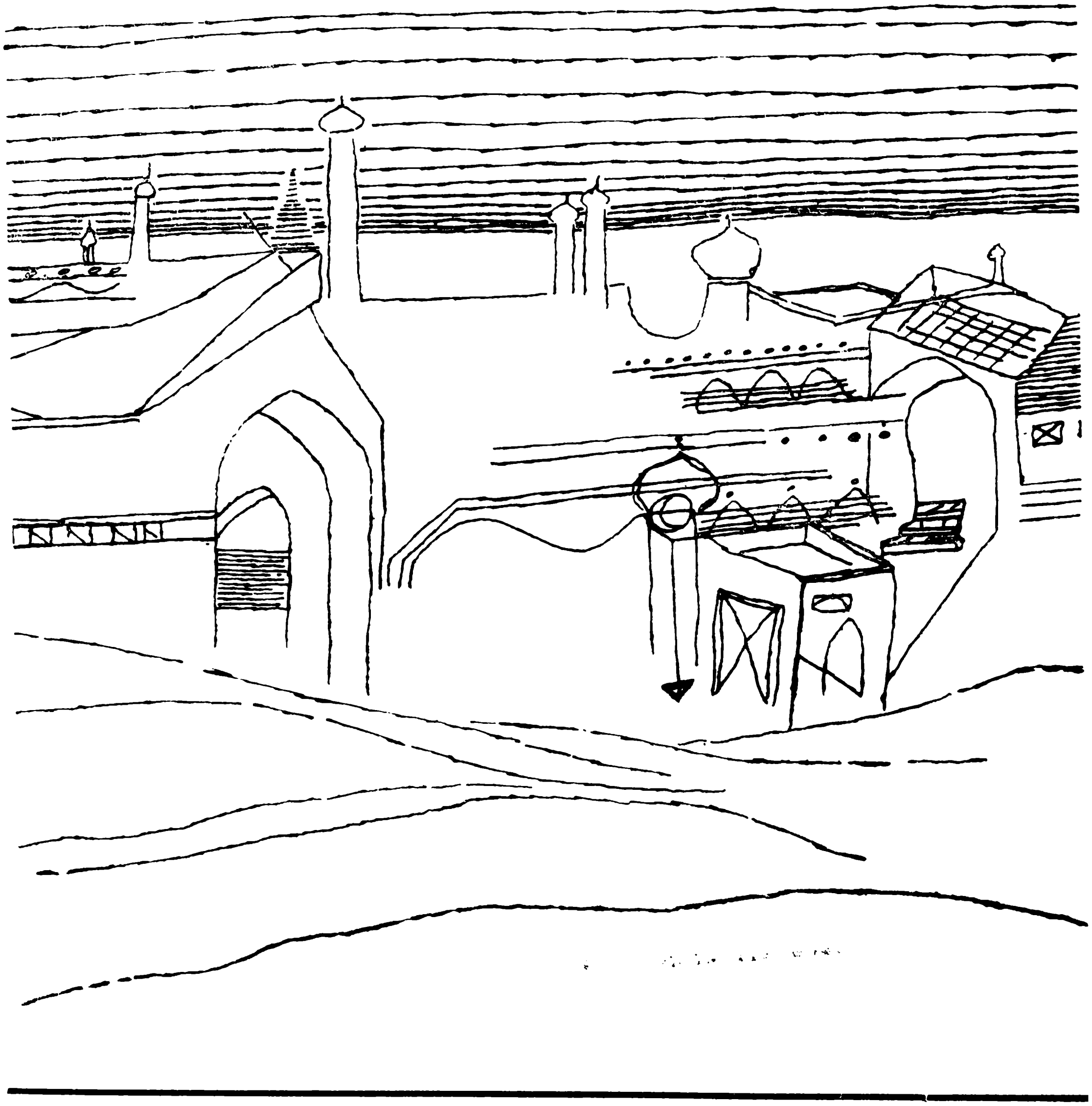

शाह पहुंचा । यहां एक रात का पड़ाव था । दूसरे दिन सब ऊंट एक पक्की सड़क पर चल रहे थे । सड़क किरमान शाह से बगदाद जाती थी । मंजिल जब निकट आ जाती है तो थकान वैसे ही दूर हो जाती है । ऊंट भी ताजादम हो गए थे । उनकी चाल तेज हो गयी थी । दूसरे दिन सुबह बगदाद की मस्जिदों की ऊंची-ऊंची मीनारें और गोल-गोल गुम्बद दिखाई देने लगे । यात्री-दल में खुशी की लहर फैल गई । मंजिल आ गई थी । एक घण्टे के अन्दर ही बगदाद के एक बड़े मैदान में उन लोगों ने पड़ाव डाल दिया ।

यात्रियों के साथ अब्दुल कादिर मस्जिद में गये, स्नान किया, कपड़े बदले और नमाज पढ़कर खुदा का शुक्र अदा किया । पुरानी इच्छा पूरी हुई । काजी अबू सईद का मदरसा इस मस्जिद से थोड़ी दूरी पर था । अब्दुल कादिर मदरसे में गये । काजी साहब

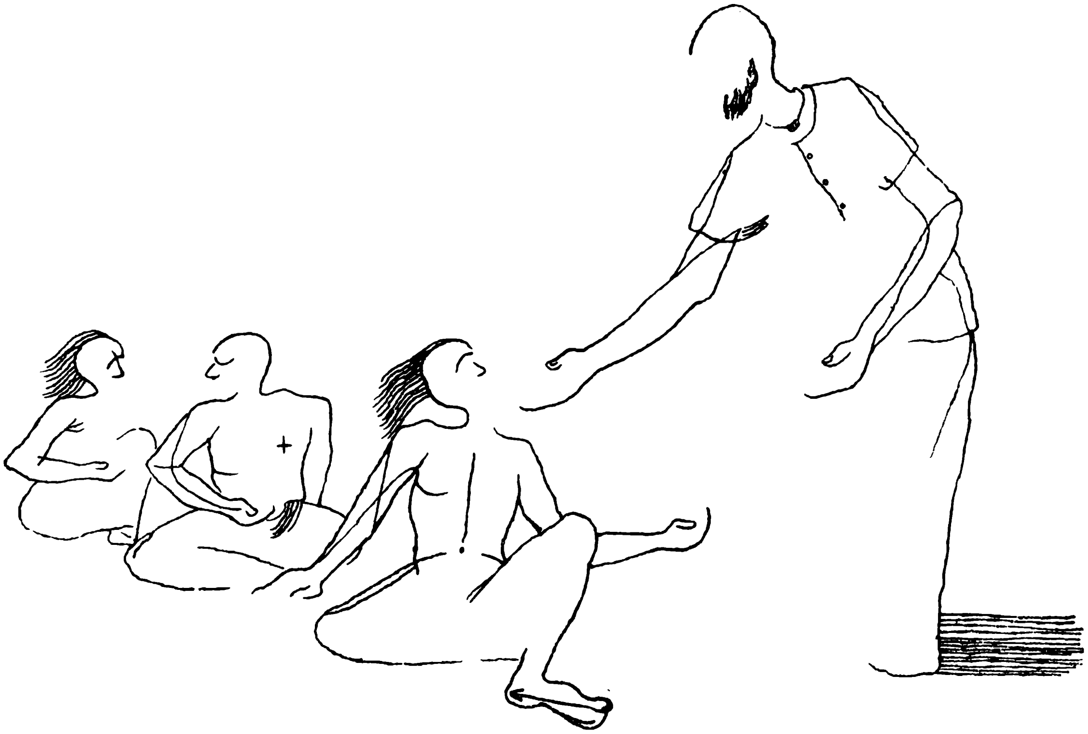

से भेंट हुई । काजी साहब बड़े अच्छे स्वभाव के थे । अब्दुल कादिर को मदरसे में प्रवेश मिल गया ।

इस प्रकार अब्दुल कादिर की बगदाद में पढ़ाई आरम्भ हो गई । दिन महीनों में बदलते रहे और महीने वर्षों में । अब अब्दुल कादिर की आयु चौबीस वर्ष की हो चुकी थी । वे विद्यार्थी से विद्वान बन चुके थे । इसी वर्ष अबू सईद ने उन्हें विद्वान होने की सनद दी, और अपने ही मदरसे में उस्ताद के रूप में नियुक्त किया । विद्यार्थी भी इस मदरसे में शिक्षा पाने में अपना भाग्य समझते थे । कुछ ही वर्षों में यह मदरसा एक शानदार इमारत बन गया ।

अब्दुल कादिर को संसार से अधिक लगाव न था । वे जमघटों और मेलों-ठेलों से दूर रहते थे । लेकिन खुदा की मेहरबानी देखो कि खुदा ने उन्हें सबका दोस्त और पक्का सहारा बना दिया था । वे रात-दिन इबादत करते और भटके हुओं को रास्ता दिखाते । दीन-दुखियों की सहायता करते । क्या अमीर, क्या गरीब, पूरा बगदाद उनके नाम की माला जपता और आज भी वे "महबूबे-सुबहानी" के नाम से याद किये जाते हैं ।

उनका जीवन प्यार और इबादत की एक यादगार बन गया है ।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना १९३८ में महात्मा गांधी की प्रेरणा तथा पेरीन बहन केप्टन के सद्‌प्रयत्नों से हुई थी। इस संस्था की कोशिश ऐसी राष्ट्रभाषा विकसित करने की रही है, जिसे आम जनता आसानी से समझ सके और जो नागरी व उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जा सके। वह भाषा है हिन्दुस्तानी!

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा दुनिया के सभी धर्मों से चुनी हुई, ज्ञान और आनन्द से भरी कहानियों की एक सौ किताबों का जो सेट बच्चों के लिए तैयार कर रही है, यह उसकी चौथी किश्त है। इस सेट के हर किताब की कीमत दो रुपये होगी।

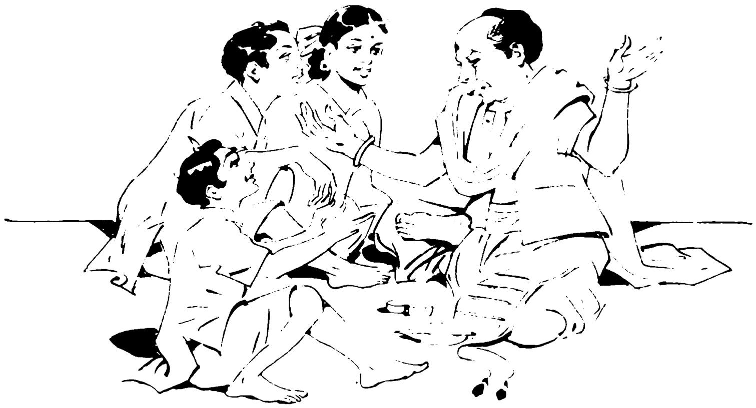

हमारे आगामी प्रकाशन

- राजा महाजनक
- संत जलाराम
- कंजूस इल्लीस
- कूरगडु मुनि
- कण देवता
- बक राक्षस का वध
- हनुमान
- स्वामी विवेकानंद
- सुनहरा नेवला
- भाई हो तो भरत जैसा

बच्चों की कहानियां

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

बंबई-४००००२